International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.340, Volume 04, No. 01(II), January - March, 2022, pp.167-173

संत साहित्य का अध्यात्म–दर्शन और ओशो

भानु प्रकाश शर्मा*

सार

संत साहित्य जिसे ज्ञानाश्रयी शाखा के रूप में जाना जाता है, वह हिंदी साहित्य की अद्भुत धरोहर है। परंतु आचार्य शुक्ल, त्रिलोकीनाथ दीक्षित एवं अन्य कई आलोचक संत साहित्य को ज्ञान मार्ग का पिष्ट–पेषण मात्र कहते हैं। उनका मानना है कि यह अनपढ़,अशिक्षित लोगों द्वारा कहा गया साधारण काव्य है। जबकि आचार्य ओशो जिन्हें रजनीश के नाम से भी जाना जाता है,वह संत कवियों को कवि ना कहकर ऋषि कहना पसंद करते हैं। जहां शुक्ल जैसे आलोचक कबीर के अतिरिक्त किसी भी संत के साहित्य को महत्वपूर्ण नहीं मानते वही ओशो ने प्रत्येक संत कवि चाहे कबीर हो या पलटू या दरिया या लाल सभी के साहित्य को अद्भुत माना है और उनके साहित्य के अलौकिक अभिप्राय को प्रकट किया है। ओशो का मानना है की संत कवि वास्तव में ऋषि हैं और उनका काव्य वेदों की ऋचाओं के समान अलौकिक एवं रहस्य पूर्ण हैं। ओशो कहते हैं की संतों के वचन गुलाब के फूल हैं। विज्ञान,गणित,तर्क और भाषा की कसौटी पर उन्हें मत कसना,नहीं तो अन्याय होगा। वे तो अर्चनाएं हैं,प्रार्थनाएं हैं। वे तो आकाश की ओर उठी हुई आंखें हैं। वे तो पृथ्वी की आकांक्षाएं हैं, चांद तारों को छू लेने के लिए। उस अभीप्सा को पहचानना। वह अभीप्सा समझ में आने लगे तो संतों का ह्रदय तुम्हारे सामने खुलेगा। वास्तव में ओशो संत साहित्य को पूर्णतया नवीन दृष्टि से और बिल्कुल नए आयाम में देखते हैं और उसका विश्लेषण करते हैं। इसलिए हिंदी के इतिहास में अब तक संत साहित्य की जो आलोचना की गई है,उसकी तुलना में ओशो द्वारा जो संतों की आलोचना की गई है,उसको समझना अत्यंत ही महत्वपूर्ण है।संत साहित्य पर ओशो की मौलिक और नवीन दृष्टि निश्चित ही हिंदी साहित्य के लिए एक अनमोल धरोहर साबित होगी।

शब्दकोशः संत साहित्य, अध्यात्म, दार्शनिक तत्व, ओशो।

---

iLrkouk

संत शब्द अपने भीतर विराट अभिप्राय को धारण करता है,परंतु हमारा प्रासंगिक शोध हिंदी संत साहित्य से संबंधित है। हिंदी साहित्य के विभिन्न आलोचकों ने इस धारा को निर्गुण काव्यधारा, ज्ञानमार्गीशाखा,और संत काव्य धारा के नाम से अभिहित किया है। हिंदी साहित्य में संत काव्य धारा संत नामदेव और कबीर से प्रारंभ होकर रैदास और नानक से गुजरती हुई पलटू तक पहुंची। परंतु सबसे पहले प्रासंगिक शोध के अध्ययन का उद्देश्यस्पष्ट करना नितांत आवश्यक है।

हिंदी साहित्य के इतिहास को समुचित रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास विभिन्न आलोचकों ने किया है।इस इतिहास को विविध आयामों से विवेचित करने का जो कार्य विविध साहित्यकारों और इतिहासकारों ने किया है,उनमें आचार्य रामचंद्र शुक्ल का नाम बहुत महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि आचार्य शुक्ल द्वारा विरचित हिंदी के

* सहायक आचार्य हिंदी राजकीय महाविद्यालय उनियारा, टोंक, राजस्थान एवं पीएच.डी. स्कॉलर, हिन्दी, डॉ.केएन मोदी युनिवर्सिटी, निवाई, टोंक, राजस्थान।

इतिहास पर बहुत से तार्किक आक्षेप लगाए गएऔर उनके द्वारा स्थापित किए गए बहुत से तथ्य बाद में परिवर्तित हुए। उदाहरण के तौर पररासौ साहित्य के आधार पर उनके द्वारा सुझाया गया वीरगाथा काल नामकरण औचित्य पूर्ण नहीं माना गया। फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं की शुक्ल का आलोचनात्मक इतिहास हिंदी साहित्य की आलोचना धारा में मील का पत्थर साबित हुआ।परंतु दूसरी ओर संत साहित्य का विश्लेषण करते हुए शुक्ल ने जिन सिद्धांतों को प्रस्तुत किया वे मान्यताएं संत साहित्य के साथ अन्याय प्रतीत होती है। उन्होंने संत साहित्य के बाबत कहा कि–

"इस शाखा की रचनाएँ साहित्यिक नहीं हैं, फुटकल दोहों या पदों के रूप में हैं जिनकी भाषा और शैली अधिकतर अव्यवस्थित और ऊटपटाँग है। कबीर आदि दो एक प्रतिभासंपन्न संतों को छोड़ औरों में ज्ञानमार्ग की सुनी सुनाई बातों का पिष्टपेषण तथा हठयोग की बातों के कुछ रूपक भद्दी तुकबंदियों में हैं। भक्तिरस में मग्न करने वाली सरसता भी बहुत कम पाई जाती है।"[1]"

आचार्य शुक्ल कायहमत न केवल चौंकाता है वरन् महान संत साहित्य के प्रति शुक्ल के एकांगी विश्लेषण को भी प्रकट करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य शुक्ल का यह मत शिल्प पक्ष को काव्य के ऊपर रखता है। कोई भी काव्यकला या शिल्प को केंद्र में रखकर नहीं लिखा जाता वरन् काव्य के पीछे–पीछे शिल्प अनुसरण करता हुआ प्रकट होता है। यदि शिल्प को काव्य के केंद्र में रख दिया जाए तो मीराबाई जैसी महान काव्य प्रतिभा और अन्य अनेक महान कवि साहित्य की धारा से वंचित कर दिए जाएंगे। यदि हम भाषा के विकास को देखें और भाषा विज्ञान के सिद्धांतों का निरीक्षण करें तो यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि भाषा सतत विकासमान रहती है। जैसे प्रकृति पल–पल परिवर्तित होती रहती है, और एक क्षण के लिए भी उसमें ठहराव नहीं रहता और जैसे मनुष्य सतत विकसित होता रहता है और शैशव से यौवन और बुढ़ापे की यात्रा करता है, उसी प्रकार भाषा भी चलायमान रहती है। जबकि काव्य शिल्प नैसर्गिक रूप से स्थिरता को स्वीकार करता है। तो जिस छंद योजना को प्राचीन संस्कृत के कवि प्रयुक्त करते रहे उसी छंद योजना की अपेक्षा हम हमेशा नहीं रख सकते।

ओशो संत काव्य की व्याख्या करते हुए स्पष्ट करते हैं कि संत कवियों के काव्य में शिल्प को प्रगाढ़ करने वाले या कला पक्ष को सौंदर्य प्रदान करने वाली मात्राकृछंद का हिसाब नहीं है, बहुत जरूरत भी नहीं है। जब सौंदर्य कम होता है, तो आभूषणों की जरूरत होती है ;जब सौंदर्य परिपूर्ण होता है, तो न आभूषणों की जरूरत होती है, न साजकृश्रंगार की। जब सौंदर्य परिपूर्ण होता है, तो आभूषण सौंदर्य में बाधा बन जाते हैं, खटकते हैं। तब तो सादापन ही अति सुंदर होता है, तब तो सादेपन में ही लावण्य होता है, प्रसाद होता है। तो जो मात्रा, छंद, व्याकरण, भाषा को बिठाने में लगे रहते हैं, उनके इतने आयोजन का कारण ही यही होता है कि भाव पर्याप्त नहीं है, भाषा से उसकी पूर्ति करनी है। जब भाव ही पर्याप्त होता है तो भाषा से पूर्ति नहीं करनी होती। जब भाव बहता है बाढ़ की तरह, तो किसी भी तरह की भाषा काम दे देती है। ओशो संत साहित्य में भाषा और शिल्प से ज्यादा भावों को महत्व देते हैं। संत काव्य के सुधि आलोचक डॉक्टर त्रिलोकी नाथ दीक्षित ने भी संत काव्य की विवेचना करते समय कहा कि संतों की उस परंपरा में जिसका प्रवर्तन कबीर ने किया था शतशरू कवि आविर्भूत हुए, परंतु न वे सब सच्चे अर्थों में कवि कहे जा सकते हैं, न उन सब का काव्य साहित्य क्षेत्र में उल्लेख है।

तो क्या यह संत काव्य का दुर्भाग्य नहीं माना जाएगा कि इस साहित्य की प्रत्येक आलोचना शिल्प को ध्यान में रखकर प्रारंभ होती है। जबकि सच्चा काव्य कभी भी शिल्प पर आश्रित नहीं रहता। हां महान काव्य जिस रूप में सामने आता है वही छंद बन जाता है। तभी तो हम कबीर के काव्य के लिए साखी, सबद, रमैनी जैसे नए छंदों को स्वीकार करने को मजबूर हो जाते हैं क्योंकि काव्य के केंद्र में भाव होता है, ना कि शिल्प। चरणदास के काव्य की समीक्षा करते हुए ओशो कहते हैं।

"शब्द बहुत क्षुद्र हैं। भाषा की बहुत गति नहीं है; असली गति मौन की है। शब्द तो यहीं पड़े रह जायेंगे कंठ से उठे है और कान तक पहुँचते हैं। मौन दूर तक जाता है अनंत तक जाता है।"[2]

यही मौन संत काव्य का प्राण है जो परमात्मा को धारण किए हुए हैं। शिल्प को प्रधानता देकर संत काव्य को दोयम दर्जे का मानना वस्तुतः उस महान काव्य के साथ अन्याय है। एक अन्य स्थल पर आचार्य शुक्ल कहते हैं।

"बात यह है कि इस पंथ का प्रभाव शिष्ट और शिक्षित जनता पर नहीं पड़ा, क्योंकि उसके लिए न तो इस पंथ में कोई नई बात थी, न नया आकर्षण। संस्कृत बुद्धि, संस्कृत हृदय और संस्कृत वाणी का वह विकास इस शाखा में नहीं पाया जाता जो शिक्षित समाज को अपनी ओर आकर्षित करता।"[3]

संत काव्य के प्रति शुक्ल का यह मत किसी भी दृष्टिकोण से उचित नहीं कहा जा सकता। संत काव्य ने भारतीय जनमानस में गहरे पेठ की है। संत काव्य की इस सतही आलोचना को निर्मूल सिद्ध करने के लिए शोध की नितांत आवश्यकता है। आचार्य ओशो संत काव्य की महानता को तर्कपूर्ण ढंग से सामने लाते हैं।

"भाषा पर मत जाना, भाव पर जाना। काव्या फूटा उनसे, जब दीया भीतर जलता है, तो रोशनीकृ उसकी किरणें बाहर फैलनी शुरू हो जाती है। वही संतों का काव्या है।"[4]

आचार्य ओशो संत काव्य को बिल्कुल नवीन आयाम से देखते हैं। संत काव्य का प्रत्येक वचन ओशो की दृष्टि में साक्षात उपनिषदों का दर्शन है। संतों का अशिक्षित होना ओशो के लिए बेमानी है। वह तो कहते हैं।–

"साफ है कि पढ़े–लिखे आदमी नहीं थे शब्द ही कहते हैं। बेपढ़े–लिखे थे। और अक्सर ऐसा हुआ है, परमात्मा बेपढे–लिखों से ज्यादा आसानी से बोल सका है। क्योंकि पढ़े–लिखे बहुत अड़चन डालते हैं। पढ़े–लिखे अपने को पूरा–पूरा नहीं दे पाते। पढ़े–लिखे तो वह बोले तो उसमें भी बीच में सुधार कर देंगे। कहेंगेरू ऐसा नहीं, ऐसा बोलो। यह वेद के अनुकूल है। यह उपनिषद के..."[5]

वस्तुतः संपूर्ण संत साहित्य उस उपनिषद की तरह है, जो संस्कृत में ना होकर जनमानस की भाषा में है। प्रासंगिक शोध में इसी तथ्य के सत्यापन का प्रयास किया गया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल और अन्य कई हिंदी के आलोचकों ने जिस प्रकार से संत साहित्य को सतही और बेपढ़े लिखे लोगों का साहित्य बताया है, यह तथ्य बुनियादी रूप से उचित प्रतीत नहीं होता। प्रत्येक संत के वचन और उनका एक–एक पद वास्तव में उपनिषदों के सूत्रों से कम नहीं है। आचार्य ओशो ने विविध हिंदी संतों की एक–एक पद के भीतर छुपे हुए गूढ़ रहस्यों को सहज रूप में प्रकट करने का विलक्षण प्रयास किया है। संत दूलनदास के साहित्य की समीक्षा करते हुए ओशो पाठकों को संबोधित करते हैं कि–

तुम्हारी दृष्टि बदलेगी और जब दृष्टि बदलती है तो सृष्टि बदल जाती है। तुम्हारे भीतर भी मोती पैदा हो सकते हैं। दूलनदास के स्वाति नक्षत्र में बरसती बूंदों को अपने हृदय तक पहुंचने दो। खोलो अपने हृदय की सीप को। सुनो ही मत, पियो। क्योंकि ये बातें नहीं हैं जो सुनकर पूरी हो जाएं ये जीवन को रूपांतरित करने के सूत्र हैं। ये क्रांति के सूत्र हैं। यह पारस का स्पर्श है लोहा सोना हो सकता है।

आचार्य ओशो ने संत साहित्य की जो विलक्षण व्याख्या की है, वह यह स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है कि संत साहित्य अद्भुत ज्ञान से भरा हुआ है। हिंदी संत साहित्य के दर्शन के बाबत और भी बहुत से प्रश्न अनुत्तरित हैं, जिन का विश्लेषण आवश्यक है। संतों को ज्ञानमार्गी कहा गया है। ज्ञान शब्द सनातन परंपरा में बहुत महत्वपूर्ण है। इस परंपरा में परमात्मा प्राप्ति के मूलतः दो मार्ग कहे गए हैं, ज्ञान योग और कर्म योग। इसमें कर्म योग को भक्ति योग और कर्म योग के रूप में दो भागों में बांटा जा सकता है। गीता में कृष्ण इन मार्गों को स्पष्ट करते हैं।–

"यत्साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्यौगैरपि गम्यते ।

एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ।।

भावार्थरू ज्ञान योगियों द्वारा जो परमधाम प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियों द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है। इसलिए जो पुरुष ज्ञानयोग और कर्मयोग को फल रूप में एक देखता है, वही यथार्थ देखता है।"[6]

सनातन परंपरा का ज्ञान मार्ग वस्तुतः सांख्य दर्शन से प्रवाहित हुआ है। सांख्य की निष्ठा कहती है कि करना कुछ नहीं है केवल जानना ही पर्याप्त है। हम परमात्मा ही हैं, परंतु माया के आवरण से मोहित होकर सत्य को वास्तविक रुप से नहीं जान पाते हैं। सांख्य कहता है कि यदि हम माया के प्रभाव से मुक्त होकर स्वयं की सत्ता को जान लें, तो यह जानना ही परमात्मा तक पहुंचा देता है।

"सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।

नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्।

भावार्थरू अन्तःकरण जिसके वश में है, ऐसा सांख्य योग का आचरण करने वाला पुरुष न करता हुआ और न करवाता हुआ ही नवद्वारों वाले शरीर रूप घर में सब कर्मों को मन से त्यागकर आनंदपूर्वक सच्चिदानंदघन परमात्मा के स्वरूप में स्थित रहता है ▫13▫[7]

इसी परंपरा में अष्टावक्र जैसे महान ऋषि हुए हैं। राजा जनक ऋषि अष्टावक्र से मात्र सुनकर ही ज्ञान को प्राप्त हो जाते हैं। यही सांख्य का मूल मार्ग है 'जानना'। परंतु हिंदी संत साहित्य का 'ज्ञान' शब्द सांख्य दर्शन वाला 'ज्ञान' नहीं है, क्योंकि सांख्य दर्शन में तो परमात्मा है ही नहीं। उस मार्ग में न तो भक्त हैं और न ही परमात्मा। परंतु संत कवियों का साहित्य तो भक्ति से भरा हुआ है। वहां पर भक्त भी है और परमात्मा भी। तो संतों के ज्ञान मार्ग में परमात्मा किस प्रकार प्रविष्ट हो गए ? ज्ञान मार्ग में भक्ति मार्ग किस प्रकार समाहित हो गया ? इस रहस्य का स्पष्टीकरण ओशो अत्यंत व्यापक रूप से करते हैं।

इसी प्रकार जब ज्ञान मार्ग में भक्ति है ही नहीं, तो प्रेम के वहां होने का भी प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि प्रेम ही अंततः भक्ति की ओर ले जाने वाला है। परंतु संत साहित्य में तो प्रेम तत्व आद्योपांत समाहित है। संपूर्ण संत साहित्य प्रेम तत्व से लबालब भरा है। कबीरदास कहते भी हैं **'ढाई आखर प्रेम के पढ़े सो पंडित होय'** संत साहित्य के इन सभी रहस्यों को आचार्य ओशो ने समग्रता से उद्घाटित किया है। संतों के प्रेम तत्व को ओशो अनोखी दृष्टि प्रदान करते हैं। जब वह कहते हैं कि उसी शून्य में प्रेम के कमल खिलते हैं, शून्य की झील पर प्रेम के कमल! और कोई झील नहीं है जहां प्रेम के कमल खिलते हो।

ज्ञान का मार्ग विचारों की भीड़ से मुक्त करके शून्य तक ले जाता है और वही शून्य परमात्मा है। और ओशो स्पष्ट कर देते हैं कि शून्य की झील में ही प्रेम के कमल खिलते हैं। समस्त संत कवियों ने उस शून्य को अर्थात् परमात्मा को जाना है और उस शून्य को जानने के पश्चात ही उनके साहित्य में प्रेम तत्व प्रगाढ़ता से प्रवाहित हुआ है। वस्तुतः ओशो ने संत साहित्य के प्रत्येक रहस्य को तर्कपूर्ण ढंग से स्पष्ट करने का प्रयास किया है। हमारा शोध उन्हीं रहस्यों को जानने का एक प्रयास है। प्रासंगिक शोध में हम संत साहित्य के दार्शनिक तत्व को जानने का प्रयास कर रहे हैं इसलिए दर्शन शब्द के अभिप्राय को समझना भी महत्वपूर्ण है।

'दर्शन' शब्द संस्कृत के 'दृश' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'देखना' इसलिए दर्शन का अर्थ हुआ जिसके द्वारा देखा जाये। ध्यान रहे, यहाँ देखने का मतलब आँखों से देखना नहीं है। अपितु, तार्किक एवं अंतर्दृष्टि से देखना हैं।

"व्यापक अर्थ में दृश्यते यथार्थ तत्वमनेन अर्थात् जिसके द्वारा यथार्थ तत्व की अनुभूति (अनुभव) हो वही दर्शन है।"[8]

सामान्यता दर्शनशास्त्र के लिए अंग्रेजी में फिलॉसफी (चीपसवेवचील) शब्द का प्रयोग किया जाता है। परंतु बुनियादी रूप से भारतीय दर्शनशास्त्र और फिलॉसफी अर्थात पाश्चात्य दर्शन शास्त्र में बहुत भेद हैं। पश्चिम सोचने पर बड़ा जोर देता है। इसलिए उन्होंने अपने विचारशास्त्र को फिलॉसफी का नाम दिया है। फिलॉसफी का मतलब है, विचार। पश्चिम में परमात्मा के या सत्य के बाबत बहुत विचार विमर्श किया गया है। परमात्मा के स्वरूप आदि के संबंध में जो पर्याप्त चिंतन पाश्चात्य विचारकों ने किया है वह पाश्चात्य दर्शन शास्त्र या फिलॉसफी कहलाया। यदि हम भारतीय दर्शनशास्त्र को देखें तो अतीत में जिन मनीषियों ने परमात्मा को अनुभूत

किया उस अनुभव के आधार पर ही भारतीय दर्शनशास्त्र का जन्म हुआ है। चाहे पतंजलि हो या अद्वैतवादी शंकर या अन्य कोई भी भारतीय मनीषी, भारत का दर्शनशास्त्र अनुभव से उत्पन्न कथन है। हमने अपने अनुभव के शास्त्र को दर्शन का नाम दिया है। दर्शन का अर्थ है–देखना।

"और जो लोग फिलॉसफी और दर्शन को पर्यायवाची कहते हैं, उन्हें कुछ भी पता नहीं है। इसीलिए इंडियन फिलॉसफी जैसी कोई चीज ही नहीं है और पाश्चात्य दर्शन जैसी कोई चीज नहीं है।"[9]

पाश्चात्य फिलॉसफी और भारतीय दर्शनशास्त्र के अंतर को विश्लेषित करते हुए ओशो स्पष्ट करते हैं कि पश्चिम में जो है, वह विचार शास्त्र है, मीमांसा है, तर्क है, विश्लेषण है। पूरब ने एक और ही फिक्र की है। पूरब ने यह अनुभव किया है कि कुछ तथ्यों को सोचने से जाना ही नहीं जा सकता। तथ्यों को देखना पड़ेगा, जीना पड़ेगा। सोचने और देखने में बड़ा फर्क है। एक आदमी प्रेम के संबंध में सोचता है, तो हो सकता है, प्रेम के ऊपर शास्त्र लिख सके। लेकिन प्रेमी प्रेम को जीता है, देखता है। हो सकता है, शास्त्र न लिख सके। और प्रेमी से अगर कोई पूछने जाए कि प्रेम के संबंध में कुछ कहो तो शायद आंखें उसकी बंद हो जाएं, आंसू बहने लगें। सोचना और देखना दो विभिन्न प्रक्रियाएं इस प्रकार सोचने और विचार करने से फिलॉसफी या पाश्चात्य दर्शन का जन्म हुआ है। जबकि देखने और अनुभव करने के परिणाम स्वरूप भारतीय दर्शनशास्त्र सामने आया है।

जब हम संत साहित्य के दर्शन का अध्ययन और विश्लेषण करने जा रहे हैं तो यह बात बहुत महत्वपूर्ण हो उठती है। भारतीय संतो ने आत्मा और परमात्मा के बाबत जो विचार व्यक्त किए हैं वह उनके अनुभव से उत्पन्न निष्कर्ष हैं। कबीर, दादू, रैदास या अन्य सभी संत जब आत्मा–परमात्मा आदि विषय पर किसी तथ्य को प्रकट करते हैं तो यह बात उनके अनुभव से प्रकट हुई है। वे सोच विचार पूर्वक किसी बात को नहीं कह रहे वरन् उन्होंने परमात्मा के जिस अनुभव को जाना है उस अनुभव का प्रकटीकरण ही संत साहित्य में किया गया है। ओशो स्पष्ट करते हैं कि वास्तविक दर्शन के लिए तो जरूरी है, परमात्मा जैसा है उसे जानने के लिए, सत्य जैसा है उसे जानने के लिए तो जरूरी है कि हम अपनी सारी कल्पनाओं को और धारणाओं को छोड़ दें। हमारी सारी कल्पनाएं शून्य हो जाएं। हमारे सारे विचार विलीन हो जाएं। हमारे अपने भीतर कोई मान्यता न हो और फिर हम देख सकें। मान्यता–शून्य जो दर्शन है, वह तो सत्य का दर्शन है, मान्यता के आधार पर जो दर्शन है, वह अपनी ही कल्पना का प्रक्षेप है, अपनी ही कल्पना का दर्शन है। संत कवियों का काव्य किसी मान्यता के आधार पर ना होकर अनुभव के आधार पर प्रकट हुआ है। मान्यता शून्य होकर उन्होंने काव्य को रचा है इसलिए संत साहित्य की दार्शनिक विचारधारा फिलॉसफी शब्द की अपेक्षा दर्शन शब्द के ज्यादा निकट है। दर्शन शब्द के मंतव्य को समझ कर जब हम संत साहित्य का अध्ययन करेंगे तो निश्चित रूप से यह बिल्कुल नया आयाम होगा। इसलिए संत साहित्य पर प्रासंगिक शोध अत्यंत उपयोगी हो जाता है।

'अध्यात्म–दर्शन शब्द को समझना भी हमारे लिए महत्वपूर्ण है। हिंदी के संत कवियों ने अध्यात्म और समाज दोनों विषयों पर अपने काव्य को प्रकट किया है। उनका संपूर्ण काव्य परमात्मा की आराधना और उपासना है। इसलिए अध्यात्म तो संत साहित्य के केंद्र में ही है। सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों और रूढ़ियों पर भी संतों ने बहुत व्यापक प्रहार किए हैं। उन्होंने समाज के दबे कुचले लोगों की फिक्र भी की है। जातिगत दुराग्रह और धार्मिक कर्मकांडों और पाखंडों का उन्होंने पुरजोर विरोध किया है। परंतु प्रासंगिक शोध में हम उनके सामाजिक दर्शन की अपेक्षा आध्यात्मिक दर्शन का अध्ययन और विश्लेषण कर रहे हैं। परमात्मा, आत्मा, माया आदि विषयों पर जो संतों का दर्शन प्रकट हुआ है उसका विश्लेषण करना ही शोध का उद्देश्य है इसलिए शोध के शीर्षक में हमने अध्यात्म–दर्शनशब्द का उपयोग करना उचित समझा है। ओशो अध्यात्म शब्द का बहुत गहन अभिप्राय सामने लाते हैं। गीता के सूत्रों का विश्लेषण करते हुए ओशो ने अध्यात्म शब्द के मंतव्य को स्पष्ट किया है। उन्होंने बताया कि मनुष्य जब सत्य का अन्वेषण करने का प्रयास करता है, तो तीन प्रकार की चेतना वाले व्यक्ति सामने आते हैं– पहला विज्ञान चेतना दूसरा कला चेतना और तीसरा अध्यात्म चेतना। मनुष्य तीन चेतनाओं से जीवन के सत्य से संबंधित हो सकता है। विज्ञान की चेतना अन्वेषण करती है वह डिस्कवर करके, खोज कर के जीवन के सत्य को सामने लाते हैं। पदार्थ में छिपे हुए सत्य को एक वैज्ञानिक उघाड़ने का अर्थात बाहर निकालने का काम करता है। वह सत्य को जैसा है, वैसा सामने लाता है। जबकि कला चेतना सत्य को

सजाती और संवारती है। वह उसे उघाडती नहीं है वरन् ढांकती है। कभी वस्त्रों से, आभूषणों से, कविताओं से तो कभी छंदों से, लयों से, रंगों से कला सत्य की कुरूपता को सजाने का प्रयास करती है, उसे आकर्षक बनाती है। जीवन के सीधे–साधे रंगों को और रंगीन बनाती हैं। जहां–जहां कुरूपता है वहां उसे सुंदर बनाने का प्रयास करती है। तथ्य के सत्य को सीधा–सीधा सामने रख देने वाला विज्ञान इसीलिए कई बार ऐसे तथ्य प्रकट कर देता है, जो कभी–कभी बड़े संघातक सिद्ध होते हैं। जबकि कला जीवन की ऐसी अभद्रता को ढक देती है जो की अप्रीतिकर हो सकती थी। अध्यात्म चेतना तीसरे प्रकार की है। ना तो वह विज्ञान की तरह सत्य को उघाडती है और ना ही कला की तरह सत्य को संवारती है वरन् सत्य के साथ वह स्वयं को लीन करती है। अध्यात्म सत्य क्या है? अथवा कैसा होना चाहिए? इसे नहीं बनाना चाहता बल्कि स्वयं ही सत्य हो जाना चाहता है। अध्यात्म की जिज्ञासा विज्ञान की तरह संघर्ष की नहीं है और कला की तरह सँवारने की भी नहीं है वरन् अध्यात्म की जिज्ञासा तल्लीनता की है, लीन हो जाने की है। सत्य जो है, उसी में डूब जाना चाहता है। सत्य सुंदर हो या असुंदर अध्यात्म उसमें डूब जाना चाहता है। यदि हम अध्यात्म शब्द के अभिप्राय को इस आयाम से देखें तो संत कवियों का पूरा जीवन ही आध्यात्मिक है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जो सत्य कहा जाता है उस सत्य को संत काव्य परंपरा परमात्मा के नाम से अभिहित करती है। इन कवियों के लिए मनुष्य जीवन का उद्देश्य सत्य को जानना अर्थात् परमात्मा को जानने से ही है। परंतु संतो के लिए परमात्मा सोचने विचारने का विषय ना होकर अनुभव का विषय है। संत काव्य की विषय–वस्तु परमात्मा के संबंध में सोचने विचारने की ना होकर अनुभूति का वर्णन करने से संबंधित है। अध्यात्म शब्द के गहन अभिप्राय को जानने के पश्चात अध्यात्म दर्शन की उपादेयता को समझा जा सकता है।

इस प्रकार अंग्रेजी का फिलॉसफी शब्द जिस प्रकार केवल सोचने विचारने की बात करता है उस दायरे में संत साहित्य के अभिप्राय को समझना संभव नहीं है। संत काव्य परमात्मा की वास्तविक अनुभूति के वर्णन करने से संबंधित है। सनातन परंपरा में दर्शन शब्द को जिस देखने से संबंधित माना गया है उसी परमात्मा को देखकर अर्थात अनुभूत करके संतो ने अपने आध्यात्मिक अनुभव को कविता के रूप में प्रस्तुत किया है। फिलॉसफी या दर्शन शब्द का अभिप्राय हो या संत काव्य की अनुभूति ओशो ने अनोखी रहस्य दृष्टि से संत काव्य के रहस्य को उजागर करने का प्रयास किया है।–

"नहीं, संत शास्त्र की व्याख्या नहीं करते, शास्त्र संतों की व्याख्या करते हैं। शास्त्र संतों के लिए प्रमाण बन जाते हैं। शास्त्र साक्षी देते हैं कि संत जो कहते हैं, ठीक कह रहे हैं। संत शास्त्रों पर निर्भर नहीं होते।"[10]

वस्तुतः संत साहित्य का विश्लेषण करने में अतीत के आलोचक कुछ आयामों से अस्पर्शित ही रहे हैं। आचार्य शुक्ल जैसे महान विचारकों के साथ–साथ अन्य कई आलोचक संत साहित्य को अनपढ़ व्यक्ति का साहित्य समझकर मूल्यांकन करते रहे हैं। इनके अनुसार संत काव्य साधारण स्तर के कवियों द्वारा कहा गया है। जबकि आचार्य ओशो पूरे तथ्यों के साथ यह स्पष्ट करते हैं कि संत साहित्य का प्रत्येक सूत्र सनातन परंपरा के उपनिषदों के समान है। ओशो की दृष्टि में संत काव्य के कवि साधारण कवि ना होकर उपनिषदों के ऋषि के समान हैं। कवि का काव्य कविता कहलाता है और एक ऋषि का काव्य ऋचा कहलाता है। उतना ही भेद कविता में और ऋचा में है। उतना ही भेद कवि में और ऋषि में है। ऋषि है जीवंत। मात्रा का उसे पता नहीं। ओशो स्पष्ट करते हैं कि अब कोई मीरा की कविताओं में मात्राएं हैं, कि कोई छंद है! अगर भाषा और मात्रा और छंद के हिसाब से तौला जाए तो कबीर और मीरा की गिनती कहीं भी नहीं होगी। तब तो तुलसीदास बड़े कवि मालूम होंगे। कहते भी हैं कि तुलसीदास महाकवि हैं और वे निश्चित ही महाकवि है। लेकिन तुलसी कवि ही हैं, ऋषि नहीं। जबकि संत काव्य के बाबत ओशो कहते हैं कि

"कबीर कवि नहीं हैं, ऋषि हैं। शब्द अटपटे हैं लेकिन उन शब्दों के पीछे गहन अर्थ चला आ रहा है। शब्द जीवंत ह, पंख हैं उनमें, यूं कि अभी उड़ जाएं! किन्हीं पिंजड़ों में बंद नहीं।"[11]

आचार्य ओशो की अंतर्दृष्टि उन गूढ़ रहस्यों को उजागर करती है, जो प्रायः हिंदी के आलोचकों की दृष्टि से ओझल रहे हैं। संत साहित्य से संबंधित एक–एक शब्द के गहन अर्थ को ओशो ने विस्तार से समझाया है। सामान्य धारणा में संत शब्द को सज्जन से संबंधित माना जाता है परंतु ओशो कहते हैंदृ

"जब बुराई और भलाई पूर्ण संतुलन में होती है तो संत पैदा होता है। संत भले आदमी का नाम नहीं है। भले आदमी का नाम सज्जन है। बुरे आदमी का नाम दुर्जन है। भलाई और बुराई को, दोनों को जो इस ढंग से आत्मसात कर ले कि वे दोनों संतुलित हो जाएं और एक दूसरे को काट दे, बराबर मात्रा में हो जाए और एक दूसरे को काट दे, तो दोनों के पार जो व्यक्तित्व पैदा होता है वह संत है संत एक गहन संतुलन है।"[12]

निष्कर्ष

अंततः हम कह सकते हैं कि संत साहित्य के विवेचन में जो कुछ प्रश्न अनुत्तरित ही रह गए थे, उनके समाधान का प्रयास ओशो ने अपनी विवेचनाओं में उत्कृष्टता के साथ किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल या डॉक्टर त्रिलोकीनाथ दीक्षित व अन्य कई आलोचक जहां संत साहित्य को अनपढ़ व्यक्तियों का साधारण साहित्य कहते हैं, वहीं दूसरी ओर आचार्य ओशो संत काव्य की प्रत्येक कविता में उपनिषदों के सूत्रों को देखते हैं। अतीत के हिंदी आलोचकों की तुलना में आचार्य ओशो कि संत साहित्य के प्रति यह मान्यता कितनी सार्थक और गंभीर है, इस तथ्य के मूल्यांकन का प्रयास हमारे शोध कार्य में किया गया है। इसी प्रकार ज्ञानमार्गी कहे जाने वाले संत साहित्य में प्रेम तत्व किस प्रकार समाहित हो पाया है, इस गूढ़ रहस्य के उद्घाटन का प्रयास भी हमारे प्रासंगिक शोध में है। हिंदी आलोचना परंपरा में संत साहित्य के दर्शन के प्रति जो मान्यताएं स्थापित की गई हैं, उसकी तुलना में आचार्य ओशो जिस मौलिक और नवीन मान्यताओं को हमारे सामने ला रहे हैं उनके विश्लेषण का प्रयास भी इस शोध कार्य का प्रमुख विषय है। वस्तुतः अपनी विलक्षण अंतर्दृष्टि से आचार्य ओशो संत काव्य के जिन रहस्यों को उद्घाटित करने का प्रयास कर रहे हैं, उन मौलिक स्थापनाओं को हिंदी साहित्य की आलोचना परंपरा के सामने लाना ही हमारे शोध कार्य का सर्व प्रमुख उद्देश्य है। हम उम्मीद कर सकते हैं कि ओशो की रहस्यपूर्ण अंतर्दृष्टि से संत साहित्य का जो नवीन स्वरूप सामने आएगा उससे हिंदी साहित्य की आलोचना परंपरा को एक नवीन और मौलिक दृष्टि प्राप्त होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 362, किंडल एडिशन
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 363, किंडल एडिशन
3. ओशो, नहीं सांझ नहीं भोर (चरणदास), पृष्ठ 32, किंडल एडिशन
4. ओशो, वाजिद कहे पुकार के, (संत वाजिद), पृष्ठ 38, डायमंड पॉकेट बुक्स, दिल्ली
5. ओशो, झरत दसहु दिस मोती, (संत गुलाल), पृष्ठ 24, डायमंड पॉकेट बुक्स, दिल्ली
6. श्रीमद्भागवत गीता, अध्याय 5, श्लोक 5, पृष्ठ 77, गीता प्रेस गोरखपुर
7. श्रीमद्भागवत गीता, अध्याय 5, श्लोक 13, पृष्ठ 79, गीता प्रेस गोरखपुर
8. https:@@googleweblight-com@spu¾https:@@www-vedicaim-com@2019@08@darshan&kya&hai-html\m%½
9. ओशो, मैं मृत्यु सिखाता हूं, पृष्ठ 32, डायमंड पॉकेट बुक्स नई दिल्ली
10. ओशो, मन ही पूजा मन ही धूप, (रैदास), पृष्ठ 42, डायमंड पॉकेट बुक्स नई दिल्ली
11. ओशो, अनहद में विश्राम, पृष्ठ 33, डायमंड पॉकेट बुक्स नई दिल्ली
12. ओशो, आकाश भर आनंद, कैवल्य उपनिषद, पृष्ठ 20, डायमंड पॉकेट बुक्स, दरियागंज, दिल्ली

❖◆❖